

THE ECONOMIC TIMES

Date: 22-10-26

Data on Value-Chain Emissions Will Help

ET Editorial

It's time for GoI to move forward with the plan requiring all exporters to provide emissions data across their full value chain. This ambitious, progressive proposal is challenging as accounting for value-chain (Scope 3) emissions is difficult, and MSMEs already struggle to account for direct (Scope 1) and indirect (Scope 2) emissions. With net-zero targets and climate-trade concerns gaining importance, accounting for value-chain emissions is necessary. Authorities must work with industry and other stakeholders to develop a multi-year, phased roadmap, with big companies taking the lead, and provide MSMEs with adequate, predictable support to build capacity and systems needed to track emissions up the line.

The EU and Britain's carbon border adjustment mechanisms (CBAMs) require exporters to account for carbon embedded in the goods they import. As more countries introduce CBAMs, the need for data will increase. Indian exporters should get a head start. While collecting value-chain emissions data is onerous, it can help identify decarbonisation opportunities, reduce CBAM levies and lower manufacturing emissions. As India's emissions trading framework, including the Carbon Credit Trading Scheme, matures, this head start will help create a level playing field for domestic industry.

For exporters to provide Scope 3 data, multiple industry segments will have to build capacity and systems to capture it. Clear timelines, phased implementation, with big companies leading the way, and support from government, industry associations and industry leaders for MSMEs will be integral to success. Rather than rejecting the proposal, industry and government should join forces to develop a viable delivery plan and turn a challenge into an opportunity.


THE HINDU

Date: 22-10-26

Bitter and sweet

The FSSAI must expand restrictions to cover all added sugars in infant foods

Editorial



The Food Safety and Standards Regulations 2020 currently allow manufacturers to add sucrose and fructose, provided their combined total does not exceed 20% of the carbohydrates in a product intended for infants aged 0-6 months. In a draft proposal, the Food Safety and Standards Authority of India (FSSAI) has pitched to eliminate this allowance — in line with WHO's recommendation to have infants breastfeed exclusively for the first six months, followed by nutritionally adequate complementary foods avoiding added sugars until 24 months. While corporations have defended sugary formulations as abiding by the Codex Alimentarius, public health experts have repeatedly described their decision to sell infant foods with

added sugar as nutritional dumping. Adding sugar has often been a commercial strategy, as it serves as a cheap bulking agent, improves palatability and encourages repeat purchases. WHO's nutrient and promotion profile model for baby foods in 2022 also identified sweet purées and products in which fruits released sugars during processing as concerns. While the FSSAI's draft proposal is a step in the right direction, stopping here would allow manufacturers to replace sucrose with another sweetening ingredient. It should assess the ingredients that manufacturers add and the nutritional profile of the finished food, thus completing the loop, with the Infant Milk Substitutes, Feeding Bottles, and Infant Foods Act 1992 rightly restricting aggressively the marketing of infant foods for children up to two years old.

Research has found that children who regularly received sweetened water during infancy subsequently preferred sweeter liquids, while exposure to different infant formula flavours influenced their dietary preferences years later, including for foods tasting neutral or bitter. Across both personal and public health dimensions, then, infants need to encounter diverse flavours. Since the 2024 dietary guidelines of the ICMR-National Institute of Nutrition say that children under two should avoid added sugars, the FSSAI's draft proposal limiting itself to six months seems like a concession to manufacturers. This should be avoided since India's regulatory response to ultra-processed foods is expanding after years of sluggishness. India is currently mulling restrictions on added sugar in foods for the youngest infants, on unhealthy foods around schools, and on front-of-pack labelling for packaged foods. If the FSSAI does not expand its proposed restriction to cover all added sugars and extend it across the first 24 months, and pair it with mandatory, interpretative front-of-pack labelling for all foods, its regulatory progress will remain incomplete.



दैनिक भास्कर

Date: 22-10-26

क्लीन एनर्जी के क्षेत्र में धीरे- बढ़ रही है हमारी भूमिका

संपादकीय



दिल्ली में बुधवार से एग्रीवोल्टाइक्स वर्ल्ड कॉफ्रेंस शुरू हुई। एग्रीवोल्टाइक्स दो शब्दों कृषि और सौर ऊर्जा से मिलकर बना है। इसमें सूरज की किरणों में निहित प्रकाश ऊष्मा से पेनल और इन्वर्टर के जरिये बिजली पैदा की जाती है। इस क्षेत्र में भारत ने बड़ी छलांग लगाते हुए 161 गीगावाट की क्षमता पाई है, जिसमें पीएम कुसुम अभियान के तहत ग्रिड से बाहर कृषि और ग्रामीण क्षेत्र में लगे पेनल्स का योगदान 14 गीगावाट है। सम्मेलन में भारत खेतों में सोलर पेनल के जरिये सिंचाई और घरेलू जरूरतों के लिए बिजली पूरी करने के सफल प्रयासों को

दक्षिणी गोलार्ध के विकासशील और गरीब देशों को दिखाएगा। विशेषज्ञ खेतों में सोलर पेनल प्लेटफॉर्म की संरचना कर रहे हैं, जिससे खेती को बगैर नुकसान पहुंचाए सौर ऊर्जा पैदा हो रही है। इससे किसानों की आव बढ़ेगी, स्थानीय स्तर पर ऊर्जा आत्मनिर्भरता सुनिश्चित होगी और प्रति यूनिट जनरेशन की कीमत भी कम होगी। एक गणना के अनुसार देश की बिजली खपत के लिए 80-90 हजार वर्ग किमी भूभाग की जरूरत होगी। इसमें खेती को नुकसान नहीं होगा, क्योंकि पेनल्स को सूरज के बदलते रुख के अनुरूप आड़ा-तिरछा किया जा सकेगा और खेत पर छावा एक जगह स्थिर नहीं रहेगी। हम स्वच्छ ऊर्जा जनरेशन में महारत हासिल कर रहे हैं। पवन ऊर्जा पंखों के टावर को भी सौर ऊर्जा संयंत्र से इंटीग्रेट करके विंड सोलर हाइब्रिड प्रोजेक्ट का आगाज किया गया है। दिन में सौर तो रात में पवन ऊर्जा, यानी नई कृषि ऊर्जा क्रांति का आगाज।

Date: 22-10-26

भारत के विचार को हमारे राष्ट्र-नायकों ने मिलजुलकर गढ़ा था

प्रो. मनोज कुमार झा, (राजद से राज्यसभा सांसद)

तीन दशक से भी अधिक समय से मैं कभी-कभी एक अजीब प्रश्न की ओर लौटता रहा हूँ। अगर मेरा जन्म 1920 के दशक के भारत में हुआ होता, तो क्या होता? अगर मेरी किशोरावस्था स्वतंत्रता संघर्ष के अंतिम, उथल-पुथल भरे दशकों के बीच बीती होती, तो मैंने क्या देखा होता, क्या सुना होता और क्या माना होता? क्या मुझे उस ऐतिहासिक क्षण की विराटता का एहसास होता, जिसमें मैं जी रहा था? मैं यह सवाल किसी अतीत-मोह के कारण नहीं पूछता।

अगर मेरा जन्म 1920 के दशक में हुआ होता, तो मेरा बचपन एक साम्राज्य की छाया में बीतता और मेरी किशोरावस्था उस भारत के साथ आगे बढ़ती, जो अपनी राजनीतिक आवाज खोज रहा था। 1930 और 1940 के दशक तक राजनीति रोजमर्रा की जिंदगी में प्रवेश कर चुकी थी।

बाजारों में गिरफ्तारियों की खबरें और अफवाहें होतीं, रेलवे स्टेशनों पर सभाओं और प्रदर्शनों में जाने वालों की भीड़ दिखाई देती। कस्बों और गांवों में स्वराज, सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा जैसे शब्द सामान्य बातचीत का हिस्सा बन चुके होते। विश्वविद्यालय केवल पढ़ाई की जगह नहीं होते; वे राजनीतिक कल्पना की प्रयोगशालाएं बन रहे होते।

स्वतंत्रता संघर्ष केवल विदेशी शासन को हटाकर उसकी जगह भारतीय शासकों को बैठाने की लड़ाई नहीं था। उसके भीतर एक बहुत बड़ा सवाल छिपा था कि इतने विविध, असमान और श्रेणीबद्ध समाज में स्वतंत्रता का अर्थ क्या होगा? नागरिकता क्या होगी?

क्या लोकतंत्र असहमति और विविधता को अपने भीतर जगह दे सकेगा? क्या राजनीतिक स्वतंत्रता सामाजिक असमानता के साथ सह-अस्तित्व में रह सकती है? अगर मैं उस समय का युवा होता, तो शायद इन सवालों से मेरा किसी किताब नहीं, बल्कि जीवन में सामना होता। राजनीति मेरे लिए कोई अकादमिक विषय नहीं होती; वह मेरा जीवन-अनुभव होती।

और फिर गांधी होते। उन वर्षों में महात्मा गांधी का सामना केवल एक राजनेता से मिलना नहीं होता। यह राजनीति में नैतिकता को उतारने के एक असाधारण प्रयोग को अपनी आंखों के सामने देखना होता। कल्पना करता हूँ कि शायद मैं भी मीलों चलकर गांधी की किसी प्रार्थना सभा में पहुंचा होता। गांवों से आए लोगों, मजदूरों, छात्रों के बीच बैठकर उन्हें सत्याग्रह, अनुशासन, अहिंसा, सद्भाव की बात करते सुनता।

फिर नेहरू भी होते- भविष्य की कल्पनाएं करने वाले। सोचिए कि मैं इलाहाबाद या लाहौर में कोई छात्र होता और नेहरू को विज्ञान, औद्योगीकरण, लोकतंत्र, और आधुनिक विश्व में भारत की भूमिका पर बोलते सुनता। वे शायद मुझे यह समझाते कि स्वतंत्रता मंजिल नहीं, एक शुरुआत है। नेहरू का बड़ा आग्रह था कि आजाद भारत को लोकतांत्रिक संस्थाएं, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, शिक्षा, आर्थिक नियोजन और लोकतांत्रिक आदतें विकसित करनी होंगी।

फिर पटेल होते, जिनका राजनीतिक पाठ कुछ अलग था। वे बताते कि आंदोलन केवल प्रेरणा से नहीं चलते। उनके लिए संगठन चाहिए, अनुशासन चाहिए, बातचीत और समझौते की क्षमता चाहिए और राजनीतिक भावना को सामूहिक कार्यवाई में बदलने की असाधारण योग्यता भी चाहिए।

और फिर, शायद सबसे बेचैन कर देने वाला सामना डॉ. भीमराव आंबेडकर से होता। आंबेडकर से मिलना किसी भी युवा राष्ट्रवादी की सहज धारणाओं को झकझोर सकता था। जिस समय राष्ट्रीय स्वतंत्रता का विचार लोगों को रोमांचित कर रहा था, आंबेडकर एक असुविधाजनक सवाल पूछ रहे थे- स्वतंत्रता किसके लिए?

इसी के साथ मौलाना अबुल कलाम आजाद भी होते, जिनकी भारत की कल्पना बढ़ती हुई सांप्रदायिक राजनीति के सामने एक अलग रास्ता प्रस्तुत करती थी। उनका साझा राष्ट्रवाद इस विश्वास पर आधारित था कि भारत की विविधता कोई समस्या नहीं, बल्कि उसकी सभ्यतागत वास्तविकता है।

गांधी, नेहरू, पटेल, आंबेडकर, आजाद एक तरह नहीं सोचते थे। उनके मतभेद वास्तविक थे। उनकी प्राथमिकताएं कई बार टकराती थीं। लेकिन शायद यही स्वतंत्रता संघर्ष की सबसे बड़ी शक्ति थी। भारत किसी तैयार विचार के रूप में अपने नागरिकों को नहीं सौंपा गया था। भारत पर बहस हुई थी, उस पर असहमति हुई थी और उसी बहस के भीतर भारत की कल्पना आकार लेती गई थी।

इतिहास अपने समय में कभी इतिहास जैसा दिखाई नहीं देता। उस समय जो लोग जेल गए या आंदोलन में शामिल हुए, वे नहीं जानते थे आने वाली पीढ़ियां उन्हें किस तरह याद करेंगी। वे इतिहास की किसी किताब के अध्याय में नहीं, अपने वर्तमान में जी रहे थे।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 22-10-26

परिसंपत्तियों की बिक्री को फिर मिलेगी गति?

एके भट्टाचार्य

नरेंद्र मोदी सरकार तेजी से विनिवेश करती दिख रही है। यह सार्वजनिक उपक्रमों (पीएसयू) की रणनीतिक बिक्री के लिए 2021 में घोषित उसकी नीति धीरे-धीरे और रुक-रुककर अमल में आने के बाद हो रहा है। गत सप्ताह केंद्रीय मंत्रिमंडल ने आईडीबीआई बैंक में सरकार की कुल हिस्सेदारी के 30 प्रतिशत से अधिक हिस्से को उस कीमत पर बेचने का प्रस्ताव मंजूर कर दिया, जिससे सरकार को चालू वित्त वर्ष में 26,500 करोड़ रुपये की विनिवेश आय होनी चाहिए।

वित्त वर्ष 2026-27 समाप्त होने में 5 महीने से अधिक समय बचा है और सरकार परिसंपत्तियों की ऐसी बिक्री से 80,000 करोड़ रुपये के सालाना लक्ष्य से अधिक राशि जुटा चुकी होगी। आईडीबीआई बैंक सौदे का एक अर्थ यह भी है कि मोदी सरकार कुछ ठहरने के बाद एक बार फिर निजीकरण पर जोर दे रही है।

ध्यान देने वाली बात यह भी है कि आईडीबीआई बैंक का निजीकरण कोई इकलौता मामला नहीं है। वित्त मंत्रालय के मुताबिक सरकार की योजना तीन और सरकारी उपक्रमों को स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्ध करने की है। ये कंपनियां इंडिया इन्फ्रास्ट्रक्चर फाइनेंस कंपनी लिमिटेड (आईआईएफसीएल), महानदी कोलफील्ड्स लिमिटेड (एमसीएल) और साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स लिमिटेड (एसईसीएल) हैं।

एमसीएल और एसईसीएल को सूचीबद्ध करने से शायद सरकार को बिल्कुल भी विनिवेश आय नहीं होगी क्योंकि ये दोनों कंपनियां कोल इंडिया लिमिटेड (सीआईएल) के पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक इकाई हैं। ऐसे में इनकी हिस्सेदारी बिकने से मिली पूरी रकम कोल इंडिया के पास ही जाएगी। लेकिन आईआईएफसीएल पूरी तरह सरकार की कंपनी है और अगर उसे मार्च 2027 के पहले सूचीबद्ध कर दिया गया तो विनिवेश से और अधिक आय होगी। इसका आरंभिक सार्वजनिक निर्गम लाने की तैयारियां शुरू भी हो चुकी हैं।

निजीकरण के मामले में सरकार का प्रदर्शन अभी तक बहुत अच्छा नहीं रहा है। उसने 2021 में बनी रणनीतिक विनिवेश की नीति में कुछ गिने-चुने महत्वपूर्ण पीएसयू को छोड़कर सभी सरकारी उपक्रमों से बाहर निकलने का फैसला किया था। लेकिन नीति बनने के बाद से अभी तक एयर इंडिया, फेरो स्क्रैप निगम, नीलाचल इस्पात निगम और इंडियन मेडिसिन्स फार्मास्युटिकल्स कॉरपोरेशन का ही निजीकरण हो पाया है। एयर इंडिया भारीभरकम और नामी कंपनी थी मगर भारी कर्ज में फंसी थी, इसलिए जनवरी 2022 में उसके निजीकरण से सरकार को 2,700 करोड़ रुपये की शुद्ध प्राप्ति ही हुई।

अन्य तीन कंपनियों की बिक्री से भी सरकार को ज्यादा रकम नहीं मिली। फेरो स्क्रैप निगम और नीलाचल इस्पात निगम के निजीकरण से कोई आय नहीं हुई और इंडियन मेडिसिन्स फार्मास्युटिकल्स कॉर्पोरेशन बेचने से 118.73 करोड़ रुपये ही मिले। इस तरह चार कंपनियों के निजीकरण से सरकार को कुल 2,818.73 करोड़ रुपये ही मिले। सरकार की विनिवेश नीति के आलोचकों ने अभी तक इस आंकड़े को मुद्दा नहीं बनाया है, लेकिन जब वे ऐसा करेंगे तो सार्वजनिक उपक्रमों की रणनीतिक बिक्री की नीति पर सवाल और भी गहरे हो जाएंगे।

मोदी सरकार के पिछले साढ़े बारह वर्षों में विनिवेश से कुल 4.37 लाख करोड़ रुपये आने का अनुमान है। किंतु इसमें निजीकरण से प्राप्त रकम का हिस्सा केवल 0.64 प्रतिशत यानी बेहद मामूली है। शेष राशि अल्पांश हिस्सेदारी वाले शेयरों की बिक्री से जुटाई गई है। पिछले डेढ़ वर्ष में परिसंपत्तियों के मुद्रीकरण (यानी सरकारी जमीन तथा इमारत बेचे जाने) में तेजी आई है। इससे लगभग 34,787 करोड़ रुपये प्राप्त होने का अनुमान है। लेकिन परिसंपत्ति मुद्रीकरण से मिली रकम जोड़ लें तब भी मोदी सरकार के कार्यकाल में अब तक विनिवेश से हुई कुल आय इस दौरान सार्वजनिक उपक्रमों से मिले लगभग 5.32 लाख करोड़ रुपये के लाभांश से कम रही हैं।

शायद यह भी एक वजह रही कि सरकार ने वित्त वर्ष 2021-22 से अपने विनिवेश कार्यक्रम की गति धीमी कर दी। विडंबना यह है कि सार्वजनिक उपक्रमों की रणनीतिक बिक्री की नीति भी सरकार उसी वर्ष लाई थी। उस समय वित्त मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारियों ने तर्क दिया था कि पीएसयू परिसंपत्तियां संभालते समय मूल्य को अधिकतम करना उतना ही आवश्यक है, जितना विनिवेश का लक्ष्य प्राप्त करना। यह रणनीति में बदलाव का संकेत था। अब सरकार केवल रणनीतिक विनिवेश पर अत्यधिक निर्भर नहीं रहना चाहती थी बल्कि राजकोषीय प्रबंधन से अलग व्यापक और समग्र दृष्टिकोण अपनाना चाहती थी।

नजरिये में बदलाव का असर भी दिखा। विनिवेश प्राप्तियां धीमी पड़ गईं, सार्वजनिक उपक्रमों से मिलने वाला लाभांश बढ़ गया और आगे के वर्षों में सरकार द्वारा इन उपक्रमों में इक्विटी निवेश तथा ऋण तेजी से बढ़ा। मोदी सरकार के साढ़े बारह वर्षों में विनिवेश से जो रकम मिली, उसका मात्र 21 प्रतिशत हिस्सा 2021-22 से 2025-26 के बीच आने का अनुमान है। किंतु इसी अवधि में सरकारी उपक्रमों से मिलने वाला लाभांश बढ़कर 3.35 लाख करोड़ रुपये हो गया, जो सरकार को इस पूरे कार्यकाल में प्राप्त कुल लाभांश का 63 प्रतिशत है। इसी दौरान पीएसयू को सरकार से इक्विटी निवेश और ऋण की राशि बढ़कर लगभग 21.45 लाख करोड़ रुपये हो गई। यह वित्त वर्ष 2021-22 से 2026-27 तक इस मद में आवंटित कुल राशि के 57 प्रतिशत से भी अधिक है।

सरकार के बजट दस्तावेजों में पूंजीगत प्राप्तियों की गणना करते समय विनिवेश का अलग से उल्लेख भी इसी अवधि में बंद हो गया। परिसंपत्तियों की बिक्री से होने वाली सभी प्राप्तियों को गैर-ऋण पूंजीगत प्राप्तियों की श्रेणी में डाल दिया गया, जो विनिवेश पर जोर नहीं देने की उसकी योजना का हिस्सा प्रतीत हुआ।

अब जबकि विनिवेश को लेकर सरकार का दृष्टिकोण बदल रहा है तो उसकी प्राप्तियों और व्यय आवंटन से जुड़े कुछ प्रमुख मानकों पर नजर रखना महत्वपूर्ण होगा। पहला, अच्छा होगा कि विनिवेश से होने वाली आय और परिसंपत्तियों के मुद्रीकरण से मिलना वाली राशि को प्राप्त बजट में स्पष्ट रूप से अलग-अलग दर्शाया जाए। इससे इन आंकड़ों को आसानी से पहचाना जा सकेगा और उनका विश्लेषण करने तथा उन्हें सार्वजनिक रूप से उपलब्ध कराने में भी सुविधा होगी।

दूसरा, विनिवेश के आंकड़ों पर नजर रखना जरूरी होगा। लेकिन उतना ही महत्वपूर्ण यह मापना भी होगा कि सरकार इक्विटी निवेश और ऋण के माध्यम से सार्वजनिक उपक्रमों में कितनी तेजी से पूंजी लगा रही है। मोदी सरकार के शुरुआती वर्षों में सार्वजनिक उपक्रमों को इक्विटी निवेश और ऋण के लिए आवंटित राशि सरकार के कुल पूंजीगत व्यय बजट के एक-तिहाई से कुछ अधिक ही थी। पिछले कुछ वर्षों में यह हिस्सा बढ़कर 50 प्रतिशत के करीब पहुंच गया है। सरकार के कुल पूंजीगत व्यय के लक्ष्य में कोई कटौती किए बिना इस आंकड़े को फिर कम करने की जरूरत है।

तीसरा, सार्वजनिक उपक्रमों से सरकार को होने वाली कुल प्राप्तियों (विनिवेश और लाभांश से प्राप्त आय) तथा इन उपक्रमों पर इक्विटी निवेश और ऋण के रूप में किए जाने वाले खर्च के अनुपात पर करीबी नजर रखना जरूरी होगा। पिछले पांच वर्ष में यह अनुपात घटा है। 2021-22 में पीएसयू से सरकार को हुई कुल आय उन पर किए गए खर्च की लगभग 30 प्रतिशत थी किंतु उसके बाद घटते-घटते 2024-25 में यह 15 प्रतिशत ही रह गई। यह आंकड़ा 2025-26 में कुछ बढ़कर लगभग 26 प्रतिशत पर पहुंच गया। यह अनुपात समय के साथ बढ़ना चाहिए क्योंकि विनिवेश से सरकार की प्राप्तियां बढ़ रही हैं और सार्वजनिक उपक्रमों में नई पूंजी डालने की जरूरत कम हो रही है।



Date: 22-10-26

लैंगिक पूर्वाग्रहों से उपजी असमानता

संध्या राजपुरोहित

विश्व आर्थिक मंच की ओर से पिछले माह जारी वैश्विक लैंगिक अंतर सूचकांक - 2026 ने एक बार फिर इस तस्वीर को सामने रखा है कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया में महिलाओं की हिस्सेदारी कितनी है और उसकी गुणवत्ता कैसी है रिपोर्ट के मुताबिक, भारत में आर्थिक भागीदारी और अवसर के मामले में यह आंकड़ा केवल 41.2 फीसद है। श्रमबल भागीदारी में महिलाओं और पुरुषों के बीच समानता का स्तर भी 44.1 फीसद के आसपास है। यानी शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों में स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर होने के बावजूद आर्थिक जीवन

में बराबरी अभी दूर है यह तस्वीर ऐसे समय सामने आई है, जब भारत में महिलाओं की श्रमबल हिस्सेदारी में बढ़ोतरी दर्ज की जा रही है। आवधिक श्रमबल सर्वेक्षण के अगस्त 2026 के आंकड़ों के मुताबिक, देश में पंद्रह वर्ष और उससे अधिक उम्र की महिलाओं की श्रमबल भागीदारी दर 34.8 फीसद रही, जो अगस्त 2025 के 33.7 फीसद से 1.1 फीसद अंक अधिक है। ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी 39.4 फीसद तक पहुंची, जबकि शहरी महिलाओं के मामले में यह 25.4 फीसदी रही।

जमीनी हकीकत समझने के लिए यह देखना भी जरूरी है कि रोजगार के बाहर महिलाएं कितना काम कर रही हैं और उसका बंटवारा पुरुषों के साथ कितना है। वर्ष 2024 के एक अन्य सर्वेक्षण के मुताबिक, देश में छह वर्ष और उससे अधिक आयु के लोगों में बिना भुगतान घरेलू काम करने वाली महिलाओं की हिस्सेदारी 81.5 फीसद, जबकि पुरुषों की 27.1 फीसद थी। घरेलू कार्य करने वाली महिलाओं ने प्रतिदिन औसतन 289 मिनट, जबकि पुरुषों ने 88 मिनट इस काम में लगाए। परिवार के सदस्यों की देखभाल में भी महिलाओं ने औसतन 137 मिनट और पुरुषों ने 75 मिनट दिए। मगर घर के भीतर का श्रम अब भी मुख्यतः महिलाओं के हिस्से में है। यही वह विरोधाभास है, जिसे महिलाओं की आर्थिक भागीदारी के किसी भी आंकड़े के साथ पड़ना जरूरी है। महिला अगर घर से बाहर काम करने लगे, लेकिन घरेलू कार्य और देखभाल की लगभग पूरी जिम्मेदारी भी उसी की बनी रहे, तो रोजगार उसके लिए अवसर के साथ अतिरिक्त बोझ भी बन सकता है।

'यह काम महिलाओं का है और यह पुरुषों का' जैसी धारणाओं की असली परीक्षा यहीं से शुरू होती है। सदियों से समाज ने काम को स्त्री और पुरुष की भूमिकाओं में बांटकर देखा है। घर संभालना, भोजन बनाना, बच्चों की देखभाल करना और परिवार की जरूरतों का ध्यान रखना महिलाओं की जिम्मेदारी मानी गई, जबकि बाहर जाकर कमाना पुरुष का दायित्व समय बदला, अर्थव्यवस्था बदली और रोजगार के स्वरूप में भी बदलाव आया, लेकिन काम के इस लैंगिक बंटवारे की जड़ें अब भी गहरी हैं समस्या यह है कि भुगतान वाले कार्य को हम 'काम' मानते हैं और बिना भुगतान के घरेलू श्रम को अक्सर जिम्मेदारी या स्वाभाविक कर्तव्य भोजन बनाना, सफाई करना, कपड़े धोना, बच्चों को तैयार करना, बुजुर्गों की देखभाल, घर का सामान लाना और परिवार की रोजमर्रा की जरूरतों को व्यवस्थित करना क्या ये सब काम नहीं हैं? दरअसल, इन कार्यों का भुगतान नहीं होता, इसलिए राष्ट्रीय आय या परिवार की आमदनी के आंकड़ों में इनका मूल्य सीधे दिखाई नहीं देता। मगर यह भी सच है कि इनके बिना परिवार का जीवन और बाजार की अर्थव्यवस्था दोनों नहीं चल सकते।

सर्वेक्षण के मुताबिक, वर्ष 2024 में रोजगार एवं उससे जुड़ी गतिविधियों में छह वर्ष और उससे अधिक उम्र के 60.8 फीसद पुरुष तथा 20.7 फीसद महिलाएं शामिल थीं। इसके विपरीत, बिना भुगतान घरेलू काम में महिलाओं की भागीदारी पुरुषों से तीन गुना से भी अधिक थी। वर्ष 2019 से 2024 के

बीच घरेलू काम में पुरुषों की भागीदारी 26.1 से बढ़कर 27.1 फीसद हुई है। यह बदलाव बहुत बड़ा नहीं है, लेकिन यह बताता है कि घरेलू जिम्मेदारियों में पुरुषों की भागीदारी में कुछ परिवर्तन जरूर हो रहा है। इसलिए महिलाओं की आर्थिक भागीदारी बढ़ाने की चर्चा को केवल रोजगार के अवसर बढ़ाने तक सीमित नहीं रखा जा

सकता। यह भी देखना होगा कि उनके पास काम करने के लिए समय कितना है। अगर दिन का बड़ा हिस्सा बिना भुगतान वाले घरेलू काम में चला जाता है, तो रोजगार, शिक्षा, कौशल विकास या अपने लिए समय निकालने की संभावना स्वाभाविक रूप से कम होगी।

रोजगार में आना अपने आप में आर्थिक सशक्तीकरण की गारंटी नहीं है। सवाल यह भी है कि महिलाएं किस तरह के काम में हैं, उन्हें कितना पारिश्रमिक मिलता है, काम कितना सुरक्षित है और आगे बढ़ने के अवसर कितने हैं। विश्व आर्थिक मंच की 2026 की रिपोर्ट में भारत के लिए अनुमानित अर्जित आय की लैंगिक समानता का स्तर 54.9 फीसद और समान काम के लिए वेतन समानता का स्तर 51.3 फीसद बताया गया है। वहीं, विधायकों, वरिष्ठ अधिकारियों और प्रबंधकों के स्तर पर महिलाओं की हिस्सेदारी से जुड़ी समानता का अंक केवल 13.1 फीसद है। हालांकि, पुरुष भी लैंगिक आधारित भूमिकाओं से मुक्त नहीं हैं। उनसे अक्सर यह अपेक्षा की जाती है कि ये परिवार के मुख्य कमाने वाले हों, आर्थिक जिम्मेदारी उठाएं और घर के काम में दखलअंदाजी न करें।

महिला और पुरुष के बीच कार्य एवं आर्थिक स्तर पर समानता लाने में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। पाठ्यपुस्तकों और कहानियों में यदि महिला हमेशा घर संभालती और पुरुष बाहर काम करता दिखाई देगा, तो बच्चों के भीतर वही धारणा मजबूत होगी। इसके उलट जब लड़कियां वैज्ञानिक, किसान, इंजीनियर, चालक वा प्रशासक तथा लड़के शिक्षक, रसोइया, देखभालकर्ता या घर संभालने वाले व्यक्ति के रूप में सहजता से दिखाई देंगे, तो काम की दुनिया की सीमाएं भी बदलेंगी। इसके अलावा सुरक्षित कार्यस्थल, उचित पारिश्रमिक, कौशल विकास, पदोन्नति के अवसर, सुरक्षित परिवहन और परिवार तथा काम के बीच संतुलन बनाने वाली व्यवस्थाएं भी जरूरी हैं। खासकर देखभाल की जिम्मेदारियों को केवल परिवार को निजी समस्या मानने के बजाय इसे व्यापक सामाजिक व्यवस्था के हिस्से के रूप में देखना होगा। घर के काम में पुरुष का योगदान 'मदद' नहीं, जिम्मेदारी है। महिला की कमाई परिवार की सहायता नहीं, उसका आर्थिक योगदान है।

सवाल केवल यह नहीं होना चाहिए कि कितनी महिलाएं काम कर रही हैं, बल्कि यह भी होना चाहिए कि वे किस काम में हैं, उनकी आय कितनी है और निर्णय लेने में उनकी कितनी भूमिका है। लैंगिक समानता का अर्थ इतना है कि किसी व्यक्ति के अवसर केवल उसके लिंग के कारण सीमित न हों काम चुनने, कौशल विकसित करने, कमाने और परिवार की जिम्मेदारियां निभाने का अधिकार एवं कर्तव्य दोनों का हो अब सवाल बदलने का समय है। यह पूछने के बजाय कि 'यह काम किसका है?' पूछा जाना चाहिए कि 'यह जिम्मेदारी कैसे साझा की जा सकती है?' जिस व्यक्ति के पास यह काम करने की क्षमता और इच्छा है, क्या उसे अवसर मिल रहा है ? काम की पहचान स्त्री या पुरुष से नहीं, बल्कि उनकी मेहनत और गरिमा से होनी चाहिए। जब कमाई साझा सम्मान और घरेलू काम साझा जिम्मेदारी बनेगा, तभी लैंगिक समानता वास्तव में जीवन का हिस्सा बन सकेगी।

Date: 22-10-26

खेतों में फसल के साथ हरित ऊर्जा उत्पादन पर जोर

प्रल्हाद जोशी, (केंद्रीय शिक्षा मंत्री)

शिवराज सिंह चौहान, (केंद्रीय कृषि मंत्री)

विकसित भारत की यात्रा की नींव हमारे गांवों की समृद्धि पर ही रखी जानी चाहिए। किसान राष्ट्र को भोजन प्रदान करते हैं, वे देश के विकास के पैदा हुए अवसरों में हिस्सेदारी के हकदार हैं। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में अन्नदाताओं का सशक्तीकरण शासन का एक प्रमुख उद्देश्य रहा है। एग्रीवोल्टाइक (एग्री पीवी) किसानों को अपनी भूमि पर खेती के साथ स्वच्छ बिजली उत्पादन में सक्षम बनाकर इस उद्देश्य को आगे ले जाने का एक बड़ा अवसर प्रदान करता है।

नई दिल्ली के 'भारत मंडपम' में इन दिनों सातवां 'एग्रीवोल्टाइक विश्व सम्मेलन' चल रहा है। वास्तव में, साल 2030 तक 500 गीगावाट नवीकरणीय ऊर्जा उत्पादन के लक्ष्य को प्राप्त करने की हमारी राष्ट्रीय यात्रा में कृषि क्षेत्र सौर ऊर्जा उत्पादन का एक सशक्त मंच बनकर उभरा है। भारत सरकार की 'पीएम- कुसुम' योजना (प्रधानमंत्री किसान ऊर्जा सुरक्षा एवं उत्थान महाभियान) पहले से सिंचाई के सौरीकरण से कार्बन उत्सर्जन में कमी और पर्यावरण अनुकूल टिकाऊ कृषि पद्धतियों को बढ़ावा दे रही है। बहरहाल, इस सम्मेलन का विषय 'पायरिंग द ग्लोबल साउथ' है, जो उस जिम्मेदारी को रेखांकित करता है, जिसे निभाने के लिए भारत तत्पर है। हम चाहते हैं कि कृषि नवाचार और ऊर्जा परिवर्तन के लाभ उन सीमांत किसानों तक पहुंचें, जो भारत के कुल किसानों का लगभग 86 प्रतिशत हैं। हमारे लिए प्रस्थान बिंदु किसान की आजीविका है। हर फसल के पीछे महीनों की मेहनत, लगाई गई पूंजी और पूरे परिवार की उम्मीदें जुड़ी होती हैं। अच्छी फसल का मतलब हमेशा अच्छी आय नहीं होता। मौसम, कृषि लागत और बाजार की कीमतें घरेलू बजट को अस्थिर कर सकती हैं। यहीं पर कृषि एवं नवीकरणीय ऊर्जा नीति का मेल कराने की जरूरत है। यह 'आत्मनिर्भर भारत' के व्यापक दृष्टिकोण का भी हिस्सा है।

भारत में एग्रीवोल्टाइक को सफलतापूर्वक अपनाने के लिए फसलों का सही चयन पहली शर्त है। उत्पादकता बनाए रखने के लिए उपयुक्त कृषि प्रबंधन अनिवार्य है। एक गांव को उत्पादक खेतों, विश्वसनीय ऊर्जा और बाजारों तक पहुंच की जरूरत होती है। इसलिए कृषि एवं ऊर्जा विभागों को राज्य सरकारों, अनुसंधान संस्थानों और स्थानीय निकायों के साथ मिलकर योजना बनानी चाहिए। किसानों को अनुबंधों को समझने, मिलने वाले संभावित लाभ को जानने की व्यवस्था होनी चाहिए। भूमि का मालिकाना हक पूरी तरह सुरक्षित रहना चाहिए। हमारे बटाईदार किसानों और महिला किसानों की भी परियोजनाओं के डिजाइन एवं लाभ के बंटवारे में हिस्सेदारी होनी चाहिए।

भारत के पास आगे बढ़ने के लिए मूल्यवान अनुभव मौजूद हैं। जोधपुर स्थित आईसीएआर के 'केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान' ने सौर ऊर्जा उत्पादन और वर्षा जल संचयन के साथ-साथ खेती के प्रयोग किए हैं। पुणे में बीएआईएफ का 'ग्रामीण नवाचार केंद्र' विभिन्न फसलों पर अलग-अलग संरचनाओं का परीक्षण कर रहा है। भारत सरकार ने साल 2025 में 'आईसीएआर- भारतीय अनुसंधान संस्थान (आईएआरए)', नई दिल्ली में 100 किलोवाट क्षमता के एग्री-फोटोवोल्टाइक उत्कृष्टता केंद्र की स्थापना के साथ एग्रीवोल्टाइक के लिए एक राष्ट्रीय स्तर के अनुसंधान कार्यक्रम की शुरुआत की है। इनके परीक्षणों में फूलगोभी, मूली, तोरई, पालक, लौकी और कद्दू जैसी सब्जियां शामिल हैं। अगले दो वर्षों में इस उत्कृष्टता केंद्र से प्राप्त डाटा भारत के सभी प्रमुख संभावित क्षेत्रों को तकनीकी सुझाव देने में मदद करेगा।

जब हम इस सम्मेलन में विश्व के प्रतिनिधियों का स्वागत कर रहे हैं, तब हमारी अपेक्षाएं व्यावहारिक हैं। इन चर्चाओं से बेहतर परखी गई परियोजनाएं, ज्ञान साझा करने वाली साझेदारियां और ऐसी व्यावसायिक व्यवस्थाएं विकसित होनी चाहिए, जिन पर किसान भरोसा कर सकें। 'विकसित भारत' अभियान तभी आगे बढ़ेगा, जब छोटे किसान के पास समृद्धि के नए स्रोतों में हिस्सेदारी के विश्वास और साधन होंगे। एग्रीवोल्टाइक योजना कृषि और किसान को अपने केंद्र में रखकर इस लक्ष्य की प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है।
